IJAER/Sep-Oct 2016/Volume-5/Issue-5 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

भक्ति आंदोलन – इतिहास और संस्कृति

डॉ लोकेश कुमार शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर , राजकीय महाविद्यालय

टोंक, राजस्थान

सारः

भारत में समय - समय पर अनेक समाज सुधार आन्दोलन चलते रहे हैं और इनका भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता रहा है। इस क्रम में भारत में हिन्दू धर्म सुधार आन्दोलन के उद्भव एवं विकास का अपना विशेष महत्व है। चूंकि मध्य युग में भारत में हिन्दू धर्म के सिद्धान्त मोक्ष मार्ग के प्रति अवनति देखी गई तथा भारत में इस्लाम के आगमन के पश्चात् बड़ी संख्या में हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन किया तथा हिन्दू धर्म की स्थिति समाज में दयनीय हो गई। इस समय मुस्लिम शासकों ने हिन्दू की धार्मिक स्वतंत्रता समाप्त कर दी तथा धर्म पर कर लगा दिया। लेकिन धीरे-धीरे हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में समन्वयवादी भावना दृष्टिगोचर हुई। इसके पीछे अकबर जैसे उदारवादी शासकों की अहम् भूमिका रही। इसी बीच दक्षिण भारत में सुधार की एक लहर की उत्पति हुई जिसे भक्ति आन्दोलन कहा जाता है। धीरे-धीरे यह लहर एक आन्दोलन में बदल गई और उत्तर भारत तक फैल गई। भक्ति आन्दोलन ने समाज सुधार को नया रूप दिया और धीरे-धीरे भारतीय समाज में नई चेतना पैदा हुई। प्रस्तुत शोध पत्र में भक्ति आन्दोलन के उद्भव, विकास एवं प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

मूलशब्द: *भक्ति आन्दोलन, इतिहास*

प्रस्तावना

मध्यकालीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आन्दोलन एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। इस काल में सामाजिक-धार्मिक सुधारकों द्वारा समाज में विभिन्न तरह से भगवान की भक्ति का प्रचार-प्रसार किया गया। सिख धर्म के उद्भव में भक्ति आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। पूर्व मध्यकाल में जिस भक्ति धारा ने अपने आन्दोलनात्मक सामर्थ्य से समूचे राष्ट्र की शिराओं में नया रक्त प्रवाहित किया, उसके उद्भव के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है लेकिन एक बात पर सहमति है कि भक्ति की मूल धारा दक्षिण भारत में छठवीं-सातवीं शताब्दी में ही शुरू हो गई थी। १४वीं शताब्दी तक आते-आते इसने उत्तर भारत में अचानक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया। किन्तु यह धारा दक्षिण भारत से उत्तर भारत कैसे आई, उसके आन्दोलनात्मक रूप धारण करने के कौन से कारण रहे, इस पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। अब बहुत से विद्वान भक्ति आन्दोलन से सम्बन्धित १९वीं-२०वीं शताब्दी के विचारों पर प्रश्न उठाने लगे हैं। अनेक विद्वान अब मध्य युग के भक्ति आन्दोलन को वैदिक परम्परा की मूल बातों का नए रूप में उदय के रूप में देखने लगे हैं।

भक्ति आन्दोलन का उद्भव एवं विकास - मध्यकाल में भारत में भक्ति आन्दोलन की उत्पति एवं विकास कुछ विशेष कारणों से हुई। इस समय मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से त्रस्त हिन्दूओं ने ईश्वर का सहारा लिया तथा उनकी ईश्वर के साथ निकटता की सोच ने भक्ति मार्ग को आगे बढाया। इसके

साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के आदान-प्रदान से सौहार्द तथा समन्वय की भावना का सूत्रपात हुआ। इससे हिन्दू - मुस्लिम एकता प्रबल हुई। इस समय इस्लाम में भक्ति भावना का उदय हुआ और उसमें कोमलता आ गई। '

इसके वास्तव में भक्ति आन्दोलन के प्रणेता संतो ने इस्लाम की तरह एकेश्वरवाद की धारणा पर बल दिया तथा मूर्तिपूजा एवं जात-पात का विरोध किया। सूफी-संतों की उदारता तथा सहिष्णुता की भावना ने धर्मांधता का खण्डन किया तथा इससे हिन्दू धर्म सुधारक इस्लाम के सिद्धान्तों के निकट आये । एकेश्वरवाद की धारणा के कारण हिन्दूओं से जाति-पाती का भेदभाव समाप्त होने लगा तथा उन्होंने भी अपने धर्म को इस्लाम की तरह सुधारवादी बनाने का प्रयास किया। इसके साथ-साथ शंकराचार्य के ज्ञानमार्ग से आमजनमानस विमुख हो गया और वे मोक्ष प्राप्ति के सरल मार्ग की तरफ अग्रसर हुए । हिन्दूओं की जाति व्यवस्था के दोषों ने भी अछूत लोगों को इस्लाम की तरफ जाने को विवश किया । भारतीय समाज सुधारकों ने भी जाति-व्यवस्था को ढीला करने में अहम् योगदान दिया । इस्लाम शासकों ने हिन्दू धर्म के मन्दिरों और मूर्तियों को नष्ट किया तो हिन्दू बिना मन्दिरों और मूर्तियों के ईश्वर की उपासना करने के लिए भक्ति मार्ग की तरफ प्रवृत हो गये ।

इस तरह मध्यकाल में हिन्दू धर्म में भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात दक्षिण भारत में हुआ । मध्यकालीन भारत में भक्तिमार्ग का सूत्रपात जिन वैष्णव संतों ने किया उनमें रामानुज का नाम प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् रामानंद इस परम्परा को उत्तर भारत में लेकर गये। 14वीं तथा 15वीं सदी में कबीरदास, रामानंद, नामदेव, गुरूनानक, दादू, रविदास, तुलसीदास तथा चैतन्य महाप्रभु जैसे संतों ने इस आन्दोलन को समस्त भारत में प्रसारित किया । यह एक ऐसा आन्दोलन था जिससे समस्त भारत में नई चेतना व जागृति पैदा हुई। इस आन्दोलन के दो प्रमुख उद्देश्य थे - हिन्दू धर्म और समाज में सुधार तथा इस्लाम व हिन्दू धर्म में समन्वय स्थापित करना । वास्तव में इस आन्दोलन को अपने प्रथम उद्देश्य में अपार सफलता मिली। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम एकता अपने गंतव्य तक नहीं पहुंच पाई। फिर भी सूफी मत के काफी सिद्धान्त भक्ति आन्दोलन में स्वीकार किये गए ।

अन्ततः यह आन्दोलन हिन्दू धर्म को आडंबरों से मुक्त करने वाला सिद्ध हुआ । इसमें चरित्र तथा आचरण की शुद्धता पर विशेष बल दिया गया तथा मोक्ष के लिए सच्चे हृदय से भक्ति मार्ग पर चलने की सलाह दी गई। इस आन्दोलन के सभी संतों ने पूजा का विरोध किया तथा इसे जन-आन्दोलन का रूप दिया गया। सभी सन्त सुधारकों ने मानव की एकता और समानता पर बल दिया तथा जाति-पाती का विरोध किया।' इन्होंने आम बोलचाल की भाषा में अपने विचार आम जनता तक पहुंचाये। इनके प्रयासों से हिन्दू - मुस्लिम संस्कृति को समन्वयवादी आधार प्रदान किया गया। सभी संतों ने ईश्वर की एकता को आधार मानकर एकेश्वरवाद की धारणा पर बल दिया। इन्होंने शुद्ध हृदय से भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया और धीरे-धीरे यह आन्दोलन काफी लोकप्रिय हो गया। इससे भारतीय समाज में फैली हुई अनेक बुराईयों जैसे सती–प्रथा, कन्या वध, दास प्रथा, आदि को दूर करने का प्रयास किया गया तथा महिलाओं के सामाजिक स्तर को सुधारने का भी प्रयास हुआ ।

इस आन्दोलन के पूर्व प्रवर्तकों में विष्णु स्वामी प्रमुख हैं, परन्तु उनके द्वारा स्थापित संप्रदाय आज लुप्त प्रायः है । इसको सैद्धान्तिक आधार रामानुज द्वारा ही प्रदान किया गया। उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद की धारणा का खंडन किया तथा वैष्णव धर्म की शिक्षाओं को दार्शनिक आधार प्रदान किया । '

उनके अनुसार ईश्वर में अनेक गुण विद्यमान हैं और वह सगुण है। उनका विचार था कि एकाग्रचित से ईश्वर की भक्ति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । परन्तु उन्होंने अपनी शिक्षा ब्राह्मण वर्ग तक सीमित रखी तथा शूद्रों को इससे वंचित रखा। इसी कारण यह आन्दोलन उनके समय में केवल दक्षिण भारत तक सीमित रहा। उसके बाद 13वीं सदी में दक्षिण भारत में माघवाचार्य ने शंकराचार्य और रामानुज दोनों के मतों का खण्डन किया। उनके मतानुसार हरि, विष्णु, नारायण आदि एक ही ईश्वर के नाम हैं। उन्होंने कर्म तथा ज्ञान मार्ग के स्थान पर भक्ति मार्ग को ही ईश्वर तथा मोक्ष की प्राप्ति का सहज तथा सरल मार्ग बताया। भक्ति आन्दोलन को दक्षिण भारत से उत्तर भारत में लाने का कार्य रामानन्द द्वारा किया गया ।

उन्होंने सभी धर्मों व सम्प्रदायों के साथ सम्पर्क स्थापित किया और सभी जाति व धर्म के लोगों को अपना शिष्य बनाया। वे राम की उपासना पर बल देते थे और उनके मतानुसार सभी लोग मोक्ष के अधिकारी हैं। उन्होंने जाति-पाती व छुआछूत का खण्डन

किया तथा ब्राह्मणवाद का विरोध करके सभी जाति व धर्म के लोगों को अपने साथ जोड़ा। बाद में उनके अनुयायी दो वर्गों में बंट गए। एक वर्ग का नेतृत्व तुलसीदास ने तथा दूसरे वर्ग का नेतृत्व कबीरदास ने किया।

तत्पश्चात् 15वीं सदी में वल्लभाचार्य ने भक्ति आन्दोलन के पुष्टिमार्ग को प्रतिपादित किया, जिसे शुद्ध अद्वैतवाद कहा जाता है। परन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने इस मत को विकृत कर दिया तथा वे मायायुक्त एवं भोग विलास का जीवन जीने लग गये। इससे धर्म की पवित्रता को आघात पहुंचा। आगे चलकर 15वीं सदी में रामानंद के शिष्य कबीरदास ने हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म को एकीकृत करने का प्रयास किया। इन्होंने मुस्लिम तथा हिन्दू धर्म की बुराईयों के खिलाफ आवाज उठाई तथा जाति-प्रथा, धार्मिक कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि का विरोध किया। उनका एकेश्वरवाद की धारणा में दृढ विश्वास था। उनके अनुसार ईश्वर प्राप्ति केवल विशुद्ध प्रेम तथा पवित्र हृदय से ही हो सकती है। मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रेम तथा भक्ति भावना है। उनके प्रयासों से एकीकरण और समन्वय की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

आगे चलकर चैतन्य महाप्रभु ने मानव भातृत्व का प्रचार किया तथा छुआछूत, जातिवाद, कर्मकाण्ड, पशुबलि, मांसाहार, मद्यपान आदि का घोर विरोध किया। उन्होंने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में अपना धार्मिक आन्दोलन फैलाया। उसके बाद मराठा संतों में तुकाराम प्रसिद्ध हैं। वे अन्य संतों की तरह व्रत, तीर्थ, मूर्तिपूजा आदि के घोर विरोधी रहे हैं। महाराष्ट्र में नामदेव नामक भक्ति आन्दोलन के प्रमुख नेता रहे हैं। इन्होनें हिन्दी तथा मराठी भाषा में लेखन कार्य करके चरित्र शुद्धि पर बल दिया तथा भक्ति मार्ग को मोक्ष का मार्ग बताया। तुकाराम के समकालीन अन्य संत रामदास थे, जो शिवाजी के गुरु थे। इसके अतिरिक्त भक्ति आन्दोलन के अन्य संतों में रामदास, रायदास, ज्ञानेश्वर, दादू दयाल, गुरू नानक, तुलसीदास, सूरदास, तथा मीराबाई का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है |

इतिहास

भक्ति आन्दोलन का आरम्भ दक्षिण भारत में आलवारों एवं नायनारों से हुआ जो कालान्तर में (800 ई से 1700 ई के बीच) उत्तर भारत सहित सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में फैल गया।[3]

इस हिन्दू क्रांतिकारी अभियान के नेता शंकराचार्य थे जो एक महान विचारक और जाने माने दार्शनिक रहे। इस अभियान को चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, तुकाराम, जयदेव ने और अधिक मुखरता प्रदान की। इस अभियान की प्रमुख उपलब्धि मूर्ति पूजा को समाप्त करना रहा।

भक्ति आंदोलन के नेता रामानन्द ने राम को भगवान के रूप में लेकर इसे केन्द्रित किया। उनके बारे में बहुत कम जानकारी है, परन्तु ऐसा माना जाता है कि वे 15वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में रहे। उन्होंने सिखाया कि भगवान राम सर्वोच्च भगवान हैं और केवल उनके प्रति प्रेम और समर्पण के माध्यम से तथा उनके पवित्र नाम को बार-बार उच्चारित करने से ही मुक्ति पाई जाती है।

चैतन्य महाप्रभु सोलहवीं शताब्दी के दौरान बंगाल में हुए। भगवान के प्रति प्रेम भाव रखने के प्रबल समर्थक, भक्ति योग के प्रवर्तक, चैतन्य ने ईश्वर की आराधना श्रीकृष्ण के रूप में की।

श्री रामानुजाचार्य, भारतीय दर्शनशास्त्री थे। उन्हें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वैष्णव संत के रूप में मान्यता दी गई है। रामानंद ने उत्तर भारत में जो किया वही रामानुज ने दक्षिण भारत में किया। उन्होंने रुढिवादी कुविचार की बढ़ती औपचारिकता के विरुद्ध आवाज उठाई और प्रेम तथा समर्पण की नींव पर आधारित वैष्णव विचाराधारा के नए सम्प्रदाय की स्थापना की। उनका सर्वाधिक योगदान अपने मानने वालों के बीच जाति के भेदभाव को समाप्त करना था।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन के अनुयायियों में संत शिरोमणि रविदास, नामदेव और संत कबीर दास शामिल हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भगवान की स्तुति के भक्ति गीतों पर बल दिया।

 ISSN: 2278-9677

प्रथम सिक्ख गुरु और सिक्ख धर्म के प्रवर्तक, गुरु नानक जी भी संत और समाज सुधारक थे। उन्होंने सभी प्रकार के जाति भेद और धार्मिक शत्रुता तथा रीति रिवाजों का विरोध किया। उन्होंने ईश्वर के एक रूप माना तथा हिन्दू और मुस्लिम धर्म की औपचारिकताओं तथा रीति रिवाजों की आलोचना की। गुरु नानक का सिद्धांत सभी लोगों के लिए था। उन्होंने हर प्रकार से समानता का समर्थन किया।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में भी अनेक धार्मिक सुधारकों का उत्थान हुआ। वैष्णव सम्प्रदाय के राम के अनुयायी तथा कृष्ण के अनुयायी अनेक छोटे वर्गों और पंथों में बंट गए। राम के अनुयायियों में प्रमुख संत कवि तुलसीदास थे। वे अत्यंत विद्वान थे और उन्होंने भारतीय दर्शन तथा साहित्य का गहरा अध्ययन किया। उनकी महान कृति 'रामचरितमानस' जिसे जन साधारण द्वारा 'तुलसीकृत रामायण' कहा जाता है, हिन्दू श्रद्धालुओं के बीच अत्यंत लोकप्रिय है। उन्होंने लोगों के बीच श्री राम की छवि सर्वव्यापी, सर्व शक्तिमान, दुनिया के स्वामी और परब्रह्म के साकार रूप से बनाई।

कृष्ण के अनुयायियों ने 1585 ईसवी में राधा-बल्लभी पंथ की स्थापना की। सूरदास ने ब्रजभाषा में सूर सागर की रचना की, जो श्री कृष्ण के मोहक रूप तथा उनकी प्रेमिका राधा की कथाओं से परिपूर्ण है।

भक्ति आन्दोलन की कुछ विशेषताएँ

- यह आन्दोलन न्यूनाधिक पूरे दक्षिणी एशिया (भारतीय उपमहाद्वीप) में फैला हुआ था।
- यह लम्बे काल तक चला।
- इसमें समाज के सभी वर्गों (निम्न जातियाँ, उच्च जातियाँ, स्त्री-पुरुष, सनातनी, सिख, मुसलमान आदि) का प्रतिनिधित्व रहा।
- इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप संस्कृत के बजाय क्षेत्रीय भाषाओं में भारी मात्रा में हिन्दू साहित्य की रचना हुई जो मुख्यतः भक्ति काव्य एवं संगीत के रूप में है।

प्रभाव

- भक्ति आन्दोलन के द्वारा हिन्दू समाज ने इस्लाम के प्रचार, जोर-जबरजस्ती एवं राजनैतिक हस्तक्षेप का कड़ा मुकाबला किया।
- इसका इस्लाम पर भी प्रभाव पड़ा। (सूफीवाद)

भक्ति आन्दोलन के बारे में विद्वानों के विचार

बालकृष्ण भट्ट के लिए भक्तिकाल की उपयोगिता अनुपयोगिता का प्रश्न मुस्लिम चुनौती का सामना करने से सीधे सीधे जुड़ गया था। इस दृष्टिकोण के कारण भट्ट जी ने मध्यकाल के भक्त कवियों का काफी कठोरता से विरोध किया और उन्हें हिन्दुओं को कमजोर करने का जिम्मेदार भी ठहराया। भक्त कवियों की कविताओं के आधार पर उनके मूल्यांकन के बजाय उनके राजनीतिक सन्दर्भों के आधार पर मूल्यांकन का तरीका अपनाया गया। भट्ट जी ने मीराबाई व सूरदास जैसे महान कवियों पर हिन्दू जाति के पौरुष पराक्रम को कमजोर करने का आरोप मढ़ दिया। उनके मुताबिक समूचा भक्तिकाल मुस्लिम चुनौती के समक्ष हिन्दुओं में मुल्की जोश जगाने में नाकाम रहा। भक्त कवियों के गाये भजनों ने हिन्दुओं के पौरुष और बल को खत्म कर दिया।

रामचन्द्र शुक्ल जी ने भक्ति को पराजित, असफल एवं निराश मनोवृत्ति की देन माना था। अनेक अन्य विद्वानों ने इस मत का समर्थन किया जैसे, बाबू गुलाब राय आदि। डॉ॰ राम कुमार वर्मा का मत भी यही है -: मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने हिंदुओं के हृदय में भय की भावना उत्पन्न कर दी थी इस असहायावस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था।

Copyright@ijaer.org

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सर्वप्रथम इस मत का खंडन किया तथा प्राचीनकाल से इस भक्ति प्रवाह का सम्बन्ध स्थापित करते हुए अपने मत को स्पष्टत: प्रतिपादित किया। उन्होंने लिखा - "यह बात अत्यन्त उपहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मन्दिर तोड़ रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की धारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिन्ध में, फिर उसे उत्तरभारत में, प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।"

निष्कर्ष

इस तरह भारत में भक्ति आन्दोलन का उद्भव होने से हिन्दू - मुस्लिम एकता को बल मिला तथा हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराईयों को खत्म करने की दिशा में एक नया जोश जनता में जागृत हुआ। इसने हिन्दू - मुस्लिम संस्कृति में समन्वयवादी दृष्टिकोण पैदा करके दोनों धर्मों में सहयोग व सद्भावना पैदा करने का कार्य किया। इसके बाद हिन्दू धर्म में सूफी परम्परा के अनुरूप एकेश्वरवाद की धारणा का त्रपात हुआ। इससे ज्ञान मार्ग की अपेक्षा भक्ति मार्ग पर बल दिया गया। भक्ति मार्ग को ईश्वर प्राप्ति का साधन बताते हुए सभी सन्तों ने ज्ञान, भक्ति और समन्वय भावना पर बल दिया। धीरे-धीरे दक्षिण भारत से पैदा होने वाला यह आन्दोलन बाद में उत्तर भारत तक फैल गया। परिणामस्वरूप ब्राह्मणवाद को चुनौती मिली और दलितोद्धार के समर्थक संतों ने हिन्दू धर्म को उदारवादी बना दिया। इससे राष्ट्रीय एकीकरण को बल मिला तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार आया। अतः भक्ति आन्दोलन के कारण भारत में ब्राह्मण धर्म से पीड़ित समाज के लोगों में नई चेतना पैदा हुई। इसके बाद हिन्दू धर्म में फैली हुई समाजिक कुरीतियां समाप्त होती नजर आई। इसने जाति - पाती तथा छुआछुत को समाप्त करके जातीय अभिमान को गहरी ठेस पहुंचाई। इस तरह समस्त भारत में भक्ति आन्दोलन के उद्भव एवं विकास से नई संत परम्परा का आगमन हुआ और भक्ति मार्ग को ही मोक्ष का मार्ग माना गया।

सन्दर्भ सूची:

[1] राधा कमल मुखर्जी, दॉ कल्चर एण्ड आर्ट ऑफ इंडिया, जार्ज एल्विन एण्ड एन्विन, लंदन, 1959.
[2] महादेव प्रसाद, समाज दर्शन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1968.
[3] ओमप्रकाश, भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास, एस. चन्द एण्ड कम्पनी, 1979.
[4] बी. बी. मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ इंडियन सोशल एण्ड पॉलिटिकल आईडियॉज, फार्मा के.एल., कलकत्ता, 1996.
[5] मिथिला शरण पॉण्डेय, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, स्वामी प्रकाशन, जयपुर, 2000. पी.सी. जैन, सामाजिक आन्दोलन का समाजशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2003. आर. के गुप्त, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, पोईंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004.
[6] एस.एल.दोषी, भारतीय समाजः संरचना और परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2007.
[7] नीरज श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतः प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2010.
[8] राजीव कुमार श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011.
[9] गुणाकर मुले, भारत: इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
[10] गजानन माधव मुक्ति बोध, भारत: इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.
[11] रोमिला थापर, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2006.